बच्चों को स्वाधीन बनाओ

❑ प्रेमचन्द

बहुत से लोग यह शीर्षक देखकर ही चौंक पड़ेंगे। वाह ! लड़के तो आप ही स्वाधीन होते हैं। वह तो बचपन ही में न पुट्ठे पर हाथ रखने देते हैं, न मुंह में लगाम डालने देते हैं। और जहां जरा समझ आयी कि सरपट दौड़ना शुरू कर देते हैं। जरूरत है कि उन्हें आज्ञा पालन सिखाओ, बड़ों का अदब करना सिखाओ, संयम सिखाओ। उन्हें स्वाधीन बनाना तो ऐसा ही है, जैसा आग पर तेल छिड़कना।

यह समय है कि लड़के आजकल उससे कहीं ज्यादा स्वाधीन हैं, जितने कि उनके माता-पिता इस उम्र में खुद थे। इस स्वाधीन प्रवृत्ति का जो नतीजा हो रहा है, उसे देखकर यदि माता-पिता के मन में ऐसी शंका पैदा हो तो कोई आश्चर्य नहीं, लेकिन इसलिए तो जरूरत है कि लड़कों को स्वाधीन बनने की शिक्षा दी जाए। बालक जितना ही बलशाली होगा, उतना ही स्वाधीन भी होगा, लेकिन अभी हम उसे इसकी शिक्षा नहीं देते। अगर युवकों को फौज के लिए भरती किया जाए तो उन्हें कवायद सिखाने की जरूरत होती है। अगर वे गायक बनना चाहें, तो यह संभव नहीं है, कि बिना सिखाए आप ही आप गाने लग जाएं, लेकिन यह देखकर भी कि हमारे बालक वृन्द जितने स्वाधीन आज हैं, उतने किसी अतीत काल में न थे। हम उन्हें बचपन से इस समस्या को हल करने की उचित शिक्षा नहीं दे रहे हैं।

थोड़े से शब्दों में, बालक को प्रधानत: ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, कि वह जीवन में अपनी रक्षा आप कर सके।

यह तो मानी हुई बात है कि आज के बालक स्वाधीन हैं, और अब किसी के बस की बात नहीं है कि इस दशा को पलट दे। इसके बहुत से कारण हैं-परिवारों का देहातों से निकलकर शहरों में आबाद होना, जहां परिचित जनों के दबाव और स्वभाव से लोग मुक्त हो जाते हैं, पुराने नीति-व्यवहारों का शिथिल हो जाना, जिनका पहले विद्रोही युवकों पर बहुत दबाव पड़ता था। मोटरकार, सिनेमा और समाचार-पत्र सब स्वाधीनता की प्रवृत्ति को मजबूत करते हैं।

लेकिन इस पर आंसू बहाने से काम न चलेगा। पुराने जमाने में जब बड़ों का हुक्म और अदब मानना समाज का सबसे मान्य नियम था और हर एक छोटी जाति अपने से ऊंची जाति के सामने अदब से सिर झुकाती थी, तब बालकों को बचपन ही से अदब करना सिखाया जाता था और उचित भी था, लेकिन आज किसी बाहरी सत्ता की आज्ञाओं को मानने की शिक्षा देना बालकों की सबसे बड़ी जरूरत की तरफ से आंखें बन्द कर लेना है। युवकों के सामने जो परिस्थिति है, उसमें अदब और नम्रता का इतना महत्त्व नहीं है, जितना व्यक्तिगत विचारों और कामों की स्वाधीनता का।

इस नई शिक्षा का आशय क्या है ? आज्ञा-पालन हमारे जीवन का एक अंग है और हमेशा रहेगा। अगर हर एक आदमी अपने मन की करने लगे, तो समाज का शीराजा बिखर जाएगा। अवश्य हर एक घर में जीवन के इस मौलिक तत्व की रक्षा होनी

चाहिए, लेकिन इसके साथ ही माता-पिता की यह कोशिश भी होनी चाहिए, कि उनके बालक उन्हें पत्थर की मूर्ति या पहेली न समझें। चतुर माता-पिता बालकों के प्रति अपने व्यवहार को जितना स्वाभाविक बना सकें, उतना बनाना चाहिए, क्योंकि बालक के जीवन का उद्देश्य कार्य-क्षेत्र में आना है, केवल आज्ञा मानना नहीं है। वास्तव में जो बालक इस तरह की शिक्षा पाते हैं, उनमें से आत्मविश्वास का लोप हो जाता है। वे हमेशा किसी की आज्ञा का इन्तजार करते हैं, हम समझते हैं कि आज कोई बाप अपने लड़के को ऐसी आदत डालने वाली शिक्षा न देगा।



दूसरा सिद्धांत यह है कि माता-पिता को कोई बात खुद न तय करनी चाहिए, बल्कि लड़कों पर ही छोड़ देनी चाहिए। एक बादशाह ने जब अपने बालक को एक अध्यापक को सौंपा तो यह सलाह दी - जितनी जल्दी हो सके, अपने को बेकार बना लेना। हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि हम सदा अपने लड़कों से अपनी आज्ञाएं मनवाते रहें, बल्कि उनको इस योग्य बना दें, कि वह खुद अपने मार्ग का अपने आप निश्चय कर लें। युवकों में यह प्रवृत्ति जितनी अधिक होगी, उतनी ही सफल उनकी शिक्षा भी समझनी चाहिए।

तीसरा सिद्धांत यह है कि गृहस्थी को जनतन्त्र के कायदों पर चलाना चाहिए। तजुर्बे से यह बात मालूम होती है, कि हम जनतन्त्र पर चाहे कितना ही विश्वास क्यों न रखें, हमारे घरों में स्वेच्छाचार ही का राज्य है। घर का मालिक मुसोलिनी या कैसर की तरह डटा हुआ उसे जिस रास्ते चाहता है, ले जाता है। और कभी इसका उलटा दिखाई देता है। घर में न कोई कायदा है, न कोई कानून। जो जिसके जी में आता है, करता है, जैसे चाहता है, रहता है; कोई किसी की खबर नहीं लेता। लड़के अपनी राह जाते हैं, जवान अपनी राह और बूढ़े अपनी राह। दोनों ही तरीके जनतन्त्र से कोसों दूर हैं- पहले तरीके में स्वतन्त्रता का नाम नहीं, दूसरे तरीके में जिम्मेदारी का। यह दोनों तरीके लड़कों की शिक्षा की दृष्टि से अनुचित हैं। करना यह चाहिए, कि घर के मामलों में शुरू ही से बच्चों की राय ली जाए। छोटा बालक भी- अगर उसको सीधे रास्ते पर लगाया जाए - अपनी जिम्मेदारी को समझने लगता है। जिन लड़कों के साथ मां-बाप बुरा व्यवहार करते हैं, वे भी उनके साथ सच्चा स्नेह रखते हैं, मगर मां-बाप उनकी इस प्रकृति को अपने स्वेच्छाचार से कुचल डालते हैं और उसका बुरा नतीजा हम रोज अपनी आंखों से देखते हैं।

हर एक मामूली आदमी को यह जानकर गर्व और आनन्द होता है कि घर में उसका भी कोई स्थान है, वह भी कुछ समझा जाता है। बालक भी इस भाव से खाली नहीं होता। सफल परिवार का सबसे बड़ा रहस्य यह है कि वह इस प्रवृत्ति को व्यवहार में लावे। ऐसा बालक सदैव परिवार के सम्मान की रक्षा करेगा। यहां उसे स्वाधीन राय कायम करने का पाठ मिल रहा है। हो सकता है कि इस विषय में कुछ लोगों का कड़वा तजुर्बा हो - युवकों ने परिवार के हित की ओर ध्यान न देकर अपने ही अधिकारों पर जोर दिया हो। अभिमान और विलास उनकी राय में आजकल के युवकों में जरूरत से ज्यादा मौजूद है, लेकिन यह बालक का दोष नहीं, मां-बाप का दोष है। बालकों को यह शिक्षा देने के लिए समय, धैर्य, बुद्धि और सहानुभूति की जरूरत है। इसका आशय यह है कि बच्चे ज्यों ही आने और पैसे में फर्क समझने लगें, उनके हाथ में पैसे दे दिए जाएं, उनका वजीफा बांध दिया जाए और कुमारावस्था में ही उन्हें इस योग्य बना दिया जाए कि वे पैसे का मूल्य समझने लगें और खर्च को आमदनी के अन्दर रखने की आदत सीखें।

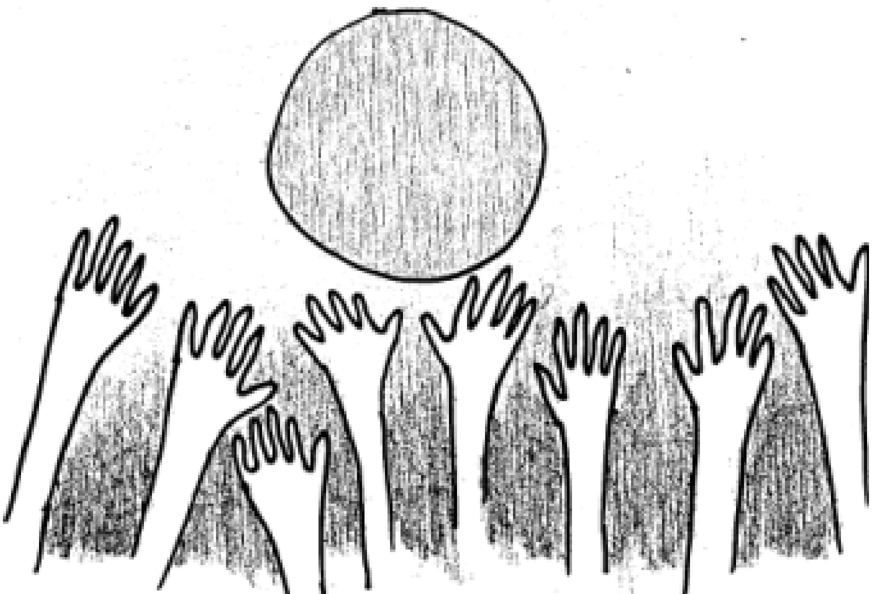
हम इन बातों पर ध्यान नहीं देते। कितने ही मां-बाप तो अपने लड़कों के विषय में उतने ही बेखबर होते हैं जितने अपने तोते या कुत्ते के विषय में। बदमाश और शरीफ बालकों की पारिवारिक स्थिति की परीक्षा ली जाए, तो सिद्ध हो जाएगा कि बाल-चरित्र में जो दोष आ जाते हैं, उसका कारण घरवालों की लापरवाही है।

बच्चों में स्वाधीनता के भाव पैदा करने के लिए यह जरूरी है कि जितनी जल्दी हो सके, उन्हें कुछ काम करने का अवसर दिया

जाए। आमतौर पर यह समझा जाता है कि अच्छे माता-पिता का कर्तव्य अपनी सन्तानों को कठिनाइयों से दूर रखना है। इसका फल यह यह है कि ऊंचे खानदानों में लड़के क्रियाहीन हो जाते हैं। जब उन्हें बिना कोई उद्योग किए ही सारी चीजें मिल जाती हैं, तो फिर वे काम क्यों करें ? हालांकि विचार-शास्त्र का का यह एक मोटा सिद्धांत है कि लड़कों को अपने हाथ से, अपने उद्योग से, कोई काम कर दिखाने में या कोई चीज बनाकर खड़ी कर देने में, जितना आनन्द मिलता है, उतना और किसी बात में नहीं। लड़का अपनी कागज की नाव पानी में डालकर जितना खुश होता है, उतना बड़े-बड़े विशाल जहाजों को चलते देखकर नहीं होता।

हमारे सुचालित मदरसों में अब इस बात को लोग समझने लगे हैं कि लड़कों को हाथ से कुछ काम कराना अव्वल दर्जे की मानसिक और नैतिक साधना है। हर एक घर में ऐसा ही होना चाहिए। लड़कों में आत्मविश्वास उत्पन्न करने का इससे उत्तम कोई साधन नहीं है।

सम्पन्न घरों में अपने हाथ से कुछ करना अपमान समझा जाता है। लड़कों के हर एक काम के लिए नौकर लगे हुए हैं। आने-जाने के लिए मोटरें हैं, उन्हें सैर कराने के लिए खूब साफ कपड़े पहिना दिए जाते हैं और ताकीद कर दी जाती है कि कपड़े मैले न होने पावें। उनके मनोरंजन के लिए सिनेमा हैं, चित्रशालाएं हैं, जहां उन्हें केवल आंख से देखने की जरूरत है, खुद कुछ नहीं करना पड़ता। इससे परतन्त्रता की जो बुरी आदत पड़ जाती है, वह जिन्दगी भर साथ नहीं छोड़ती। ऐसे ही विलास में पले हुए युवक हैं, जो अपने स्वार्थ के लिए अपने भाइयों का अहित करते हैं, सरकार की बेजा खुशामद करते हैं।



हम बहुधा लड़कों को कोई नया काम करते देखकर घबड़ा जाते हैं। घड़ी छू रहा है, कहीं तोड़ न डाले ! लड़के ने कलम हाथ में लिया और हां, हां, हां का शोर मचा ! ऐसा नहीं होना चाहिए। लड़कों की स्वाभाविक रचनाशीलता को जगाना चाहिए।

लड़का खिलौने बनाना चाहे, बेतार का यन्त्र बनाना चाहे, मछली का शिकार करना चाहे, तरकारियां पैदा करना चाहे, कपड़े सीना चाहे, बीन बजाना चाहे, नाटकों में अभिनय करना चाहे या कविता लिखना चाहे, उसे बाधा मत दो। अगर कोई बालक साल के चन्द हफ्ते भी प्राकृतिक शक्तियों के बीच में रहे, दरिया में किश्ती चलाए, मैदान में गाड़ी चलाए या फावड़ा लेकर खेत में काम करे, तो उसे आत्मविश्वास का जो अनुभव होगा, वह पुस्तकों और उपदेशों से नहीं हो सकता। आश्चर्य तो यह है कि वह लोग भी, जिनकी जवानी कठिनाइयों में गुजरी, अपने बालकों को जीवन-संग्राम के उत्साह बढ़ाने वाले कामों से बचाते हैं।

हम यहां यह बतला देना चाहते हैं कि स्वाधीनता से हमारा मतलब क्या है ? इसका यह मतलब नहीं है कि हम बिना रोक-टोक जो कुछ चाहे करें और जो कुछ चाहें न करें। इसका मतलब यह है कि बाहरी दबाव की जगह हममें आत्मसंयम का उदय हो। सच्चा स्वाधीन आदमी वही है, जिसका जीवन आत्मा के शासन से संयमित हो जाता है, जिसे किसी बाहरी दबाव की जरूरत नहीं पड़ती। बालकों में इतना विवेक होना चाहिए कि वे हरएक काम के गुण दोष को भीतर की आंखों से देखें। ◆

(अप्रैल 1930)